अध्याय १

ददस्वान्नं युधिष्ठिर

अन्न माहात्म्य एवं अन्नदान माहात्म्य

ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर

''युधिष्ठिर ! अन्नदान करो, अन्नदान करो, अन्नदान करो!'' श्रीभविष्यमहापुराण में अन्नदान की महिमा का आख्यान प्रारम्भ करते हुए श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को यही आदेश देते हैं।[१]

श्रीभविष्यमहापुराण का यह प्रसङ्ग सम्भवतः महाभारत में अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण में हुई धर्मचर्चा पर आधारित है। अश्वमेध के समारम्भ से पूर्व युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के आग्रह पर भीष्म पितामह से धर्म की शिक्षा प्राप्त करते हैं। युधिष्ठिर और उनके सब भाई शरशय्या पर लेटे भीष्म पितामह के चरणों में जा बैठते हैं और वे श्रीकृष्ण की उपस्थिति में युधिष्ठिर को धर्म के सब रूपों एवं सब पक्षों की और विशेषतः राजधर्म की विस्तृत शिक्षा देते हैं। भीष्म पितामह का यह विशद एवं वृहत् प्रवचन महाभारत के प्रायः पूरे शान्ति पर्व और सम्पूर्ण अनुशासन पर्व में चलता है। महाभारत महाकाव्य के शतसहस्र श्लोकों का एक चौथाई इन दो पर्वों में आ जाता है। इस महान् धर्मप्रवचन के सम्पन्न होने पर ही भीष्म पितामह अपनी भौतिक देह का त्याग करते हैं। तब श्रीकृष्ण और कृष्णद्वैपायन व्यास युद्ध में हुए संहार और भीष्म पितामह के अवसान से विषण्ण युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ के लिये प्रेरित करते हैं।

अश्वमेध यज्ञ का आयोजन तो बड़ा कठिन होता है। उसके लिये अनन्त साधन, साहस और शौर्य की अपेक्षा रहती है। युद्ध में हुए विनाश से क्षीण और प्रियजनों के संहार से विषण्ण युधिष्ठिर को अश्वमेध के लिये पर्याप्त साधन, साहस व शौर्य जुटाने के लिये अनेक उपक्रम करने पड़ते हैं। तब कहीं उनका अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हो पाता है।

[१] भविष्य ४.१६९.२, पृ.५२६।

Centre for Policy Studies www.cpsindia.org

अश्वमेध के सम्पन्न होने पर, यज्ञ सम्बन्धी सारे आयोजन एवं प्रयास से निवृत्त होकर युधिष्ठिर स्वयं श्रीकृष्ण से धर्म की शिक्षा पाने का अनुरोध करते हैं, और भगवान् श्रीकृष्ण प्रायः १३०० श्लोकों में युधिष्ठिर को धर्म का ज्ञान करवाते हैं। महाभारत के दक्षिण भारतीय पाठों में ये १३०० श्लोक आश्वमेधिक पर्व के अन्तर्गत वैष्णवधर्म पर्व के नाम से पाये जाते हैं।

वैष्णवधर्म पर्व के प्रायः अन्त में युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से भीष्म पितामाह के सारे प्रवचन का सार जानने का आग्रह करते हैं – भीष्मवाक्यात् सारभूतं वद धर्मं सुरेश्वर।[२] युधिष्ठिर के आग्रह को स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं – अन्नेन धार्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्... अन्नदः प्राणदो लोके प्राणदः सर्वदो भवेत्। तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं भूतिमिच्छता।[३] 'यह जड़-जङ्गम विश्व अन्न पर ही टिका है... जो अन्नदान करता है वह मानो प्राणदान ही करता है, और जो किसी को प्राणदान देता है वह तो सब कुछ ही दे देता है। इसलिये इहलोक एवं परलोक में सुख-वैभव पाने की इच्छा रखने वाले को अन्नदान के प्रति विशेषतः प्रवृत्त होना चाहिये।'

भीष्म पितामह के वृहत् प्रवचन का सार भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अन्नदान की महिमा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कदाचित् इसी प्रसङ्ग को स्मरण करते हुए श्रीभविष्यमहापुराण में अन्नदान माहात्म्य का आरम्भ श्रीकृष्ण के उस अनुल्लङ्घनीय आदेश वाक्य से किया गया है– ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर!

अन्नदान माहात्म्य

भीष्म पितामह की सम्पूर्ण शिक्षा का सार युधिष्ठिर को समझाते हुए श्रीकृष्ण कुल १५ श्लोक कहते हैं। उनमें से पहले दस श्लोक गृहस्थ जीवन में अन्नदान की प्रधानता का प्रतिपादन करते हैं और आगे के पाँच श्लोकों में अन्न की महिमा का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण बताते हैं कि कैसे रसगर्भित पृथिवी से अन्न उपजता है और कैसे उस अन्न से ही जीवसृष्टि का आविर्भाव एवं निर्वाह होता है। भारत के आर्ष साहित्य में अन्न और अन्नदान की महिमा का विस्तृत वर्णन और विवेचन हुआ है। अगले अध्यायों में हम अन्न व अन्नदान से सम्बन्धित आर्ष साहित्य के कुछ प्रसङ्गों को समझने का प्रयास करेंगे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अन्न एवं अन्नदान सम्बन्धी सारा भारतीय साहित्य, सम्पूर्ण आर्ष वर्णन और विवेचन मानो महाभारत के वैष्णवधर्म पर्व में श्रीकृष्ण के मुख से उच्चरित पन्द्रह श्लोकों पर एक दीर्घ भाष्य ही हो।

---

[२] महाभारत *आश्वमेधिक* ९२, पृ.६३५५।

[३] महाभारत *आश्वमेधिक* ९२, पृ.६३५५।

अन्नदान माहात्म्य

युधिष्ठिर को अन्नदान की महिमा बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं[४] –

अन्नेन धार्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
अन्नात् प्रभवति प्राणः प्रत्यक्षं नास्ति संशयः ।।

यह जड़-जङ्गम विश्व अन्न पर ही टिका है। अन्न से जीवन की उत्पत्ति होती है। यह प्रत्यक्ष ही है, इस विषय में कोई शङ्का नहीं हो सकती।

कलत्रं पीडयित्वा तु देशे काले च शक्तितः ।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ।।

इसलिये इहलोक व परलोक में सुख-वैभव की इच्छा रखने वाले को चाहिये कि जो भी माँगे उसे अन्न देता जाये। परिवार के कष्ट की चिन्ता छोड़कर अपने सामर्थ्य की सीमा तक और देश-काल के अनुरूप अन्नदान करते जाना चाहिये।

विप्रमध्वपरिश्रान्तं बालं वृद्धमथापि वा ।
अर्चयेद् गुरुवत् प्रीतो गृहस्थो गृहमागतम् ।।

गृहस्थ को घर पर आये वृद्ध, बालक, श्रान्त यात्री और विप्र का ऐसे सप्रेम स्वागत-सत्कार करना चाहिये जैसे स्वयं गुरु ही घर पर आ पधारे हों।

क्रोधमुत्पतितं हित्वा सुशीलो वीतमत्सरः ।
अर्चयेदतिथिं प्रीतः परत्र हितभूतये ।।

इस लोक से परे भी सुख-वैभव की इच्छा रखने वाले गृहस्थ को चाहिये कि सब प्रकार के क्रोध व मत्सर का संवरण करके घर आये अतिथि का प्रीति एवं शीलपूर्वक स्वागत-सत्कार करे।

अतिथिं नावमन्येत नानृतां गिरमीरयेत् ।
न पृच्छेद् गोत्रचरणं नाधीतं वा कदाचन ।।

घर आये अतिथि की कभी अवमानना न करें, उसकी उपस्थिति में कोई असत्य वचन

[४] महाभारत *आश्वमेधिक* ९२, पृ.६३५५।

न बोलें और कभी उसके गोत्र-चरण या उसकी पढ़ाई एवं पाण्डित्य के विषय में प्रश्न न उठायें।

चण्डालो वा श्वपाको वा काले यः कश्चिदागतः।
अन्नेन पूजनीयः स्यात् परत्र हितमिच्छता॥

उचित समय पर घर पर यदि चण्डाल अथवा श्वपच भी आ जाये तो परलोक में हित चाहने वाले गृहस्थ को निश्चय ही उसे भी अन्न समर्पित कर उसका सम्मान-सत्कार करना चाहिये।

पिधाय तु गृहद्वारं भुङ्क्ते योऽन्नं प्रहृष्टवान्।
स्वर्गद्वारपिधानं वै कृतं तेन युधिष्ठिर॥

जो गृहस्थ अपने घर का द्वार रुद्ध करके प्रसन्नतापूर्वक अकेले ही अन्न का उपभोग करता है, उसने तो युधिष्ठिर! मानो अपने लिये स्वर्ग के द्वार ही रुद्ध कर लिये हैं।

पितॄन् देवानृषीन् विप्रानतिथींश्च निराश्रयान्।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत्॥

जो व्यक्ति पितरों, देवों, ऋषियों, घर आये अतिथियों और आश्रयहीन जनों को अन्न से प्रसन्न करता है, उसके पुण्य का फल महान् है।

कृत्वा तु पापं बहुशो यो दद्यादन्नमर्थिने।
ब्राह्मणाय विशेषेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अनेक पाप करके कोई पापी यदि याचक को और विशेषतः ब्राह्मण याचक को अन्न दे देता है तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।

अन्नदः प्राणदो लोके प्राणदः सर्वदो भवेत्।
तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं भूतिमिच्छता॥

जो अन्नदान करता है, वह मानो पाने वाले के लिये प्राणों का ही दान करता है, और जिसने प्राण दिये हैं उसने तो सब कुछ ही दे दिया। इसलिये इहलोक एवं परलोक में सुख-वैभव पाने की इच्छा रखने वाले को अन्नदान के प्रति विशेषतः प्रवृत्त होना चाहिये।

अन्न माहात्म्य

ऊपर के दस श्लोकों में अन्नदान के महत्त्व का वर्णन हुआ है। अगले पाँच श्लोकों में जीवन की उत्पत्ति व निर्वाह में अन्न की प्रमुखता का प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं[५] –

अन्नं ह्यमृतमित्याहुरन्नं प्रजननं स्मृतम्।
अन्नप्रणाशे सीदन्ति शरीरे पञ्च धातवः॥

अन्न को ही अमृत कहा गया है और अन्न को ही जीवों के जन्म में कारक माना गया है। अन्न नहीं रहता तो शरीर की घटक पाँचों धातुएँ नष्ट हो जाती हैं।

बलं बलवतो नश्येदन्नहीनस्य देहिनः।
तस्मादन्नं विशेषेण श्रद्धयाश्रद्धयापि वा॥

देहधारियों में बलवान् का बल भी अन्न न प्राप्त होने पर नष्ट हो जाता है। इसलिये जीवन में अन्न का विशेष महत्त्व है। अन्न का सेवन श्रद्धा से किया जाये अथवा अश्रद्धा से, अन्न के बिना जीवन का निर्वाह नहीं।

आदत्ते हि रसं सर्वमादित्यः स्वगभस्तिभिः।
वायुस्तस्मात् समादाय रसं मेघेषु धारयेत्।
तत् तु मेघगतं भूमौ शक्रो वर्षति तादृशम्।
तेन दिग्धा भवेद् देवी मही प्रीता च भारत॥

सूर्य अपनी किरणों से सारे रस को खींच लेता है और वायु उस रस को ले जाकर मेघों में स्थापित कर देती है। मेघों में सञ्चित रस को इन्द्र वैसे-का-वैसा पृथिवी पर बरसा देते हैं। भारत युधिष्ठिर! उस रस से सिक्त हुई देवी पृथिवी प्रसन्नता को प्राप्त होती हैं।

तस्यां सस्यानि रोहन्ति यैर्जीवन्त्यखिलाः प्रजाः।
मांसमेदोऽस्थिमज्ज्ञानां सम्भवस्तेभ्य एव हि॥

इस प्रकार तृप्त एवं प्रसन्न हुई पृथिवी से धान्य उपजता है और उस धान्य से सारी प्रजा

---

[५] महाभारत *आश्वमेधिक* ९२, पृ.६३५५-५६।

के जीवन का निर्वाह होता है। मांस, मेद, अस्थि और मज्जा का निर्माण पृथिवी से उपजे उस धान्य से ही होता है।

इस प्रकार इन पन्द्रह श्लोकों में श्रीकृष्ण अन्न और अन्नदान की महिमा का सम्पूर्ण वर्णन कर देते हैं। इन श्लोकों में अन्नदान से सम्बन्धित प्रायः सभी भारतीय अवधारणाओं का प्रतिपादन हो गया है। भगवान् श्रीकृष्ण अन्नदान से प्राप्य महान् एवं अतुलनीय पुण्य के विषय में बताते हैं, स्वयं खाने पर बैठने से पूर्व सर्वदा दूसरों को खिलाने के अनुल्लङ्घनीय अनुशासन की व्याख्या करते हैं, याचक के प्रति सम्मान एवं विनय का भाव रखने का उपदेश देते हैं, घर पर आये अतिथि के वर्ण, गोत्र-चरण अथवा पाण्डित्य का विचार किये बिना प्रत्येक आने वाले का सम्मान-सत्कार करने का पाठ पढ़ाते हैं और याचकों के लिये अपना द्वार रुद्ध करके अकेले अन्न का रसास्वादन करने वाले अभागे के भाग में आने वाले घोर पाप के प्रति सब को सचेत करते हैं। और फिर श्रीकृष्ण बताते हैं कि कैसे जीवसृष्टि की उत्पत्ति और निर्वाह में प्रमुख कारक के रूप में अन्न भारतीय चेतना में व्याप्त है। श्रीकृष्ण के श्रीमुख से प्रतिपादित ये अनुशासन एवं अवधारणाएँ अन्न एवं अन्नदान सम्बन्धी भारतीय चेतना के मूल सूत्र हैं। भारत के वृहद् आर्ष साहित्य में यही सूत्र विभिन्न सन्दर्भों में और विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते रहते हैं। आगे के अध्यायों में अन्न एवं अन्नदान सम्बन्धी भारतीय अनुशासन व अवधारणाओं की कतिपय विशेषतया विशद अभिव्यक्तियों और जीवन्त आख्यायिकाओं को हम सुनेंगे। परन्तु उससे पहले स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का पाठ पढ़ाते हुए सृष्टि में अन्न व अन्नदान की भूमिका की जो व्याख्या की है, उसे सुन लिया जाये।

कर्मयोग

श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में अर्जुन को कर्मयोग की शिक्षा देते हुए श्रीकृष्ण बताते हैं कि यह संसार मानव और सृष्टि के समस्त भावों के अभिमानी देवों के मध्य आदान-प्रदान की एक शृङ्खला ही है। इस शृङ्खला को अविच्छिन्न रखना, आदान-प्रदान के इस सृष्टि चक्र को चलाये रखना ही यज्ञ है, यही योग्य कर्म है। और यज्ञशिष्ट अन्न खाना, सृष्टि के समस्त भावों का भाग निकालने के उपरान्त बचे अन्न का उपभोग करना ही सम्यक् भोजन है, दूसरों का भाग उन्हें दिये बिना अकेले खाना तो पाप का ही भोग करना है। श्रीकृष्ण कहते हैं[६] –

[६] श्रीमद्भगवद्गीता ३.१०-१६, देखिये महाभारत *भीष्म* २७.१०-१६, पृ.२६१४-१६।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति ने प्रजा और यज्ञ का एक साथ सृजन किया और फिर प्रजा को आशीर्वाद देते हुए कहा – इस यज्ञ से तुम फलो-फूलो। यह यज्ञ तुम्हारे लिये इष्टकामधुक् बने, इसके माध्यम से तुम्हारी सब इच्छाओं की पूर्ति हो।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।

इस यज्ञ से तुम इन्द्रादि सृष्टि के विभिन्न भावों के अभिमानी देवों को भावित करो, उनकी वृद्धि में सहाई बनो और वे सम्यक् वृष्टि आदि के माध्यम से तुम्हारी वृद्धि करें। एक-दूसरे को भावित करते हुए, एक दूसरे की वृद्धि में सहाई होते हुए तुम दोनों, मानव और देव दोनों ही, परमश्रेयस् को प्राप्त होओ।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।।

यज्ञ से भावित हुए, यज्ञ से सन्तुष्ट एवं उन्नत हुए देव मानव को इच्छित भोगों से सम्पन्न करते हैं। देवों से प्रदत्त इन भोगों को देवों को ही समर्पित किये बिना जो स्वयं उनका उपभोग करता है, वह तो चोर-सा ही है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।

जो यज्ञशिष्ट अन्न का उपभोग करते हैं, जो सृष्टि के सभी भावों का भाग निकालने के उपरान्त शेष अन्न का भोजन करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो केवल अपने लिये ही अन्न पकाते हैं, वे पापी जन तो पाप ही खाते हैं।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।

सब प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से सम्भव होती है और यज्ञ योग्य कर्म से उत्पन्न होता है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

योग्य कर्म का स्रोत वेदरूपी ब्रह्म में है और वेदरूपी ब्रह्म अक्षर से, कभी न क्षय होने वाले परम पुरुष के मानो प्रथम निःश्वास से उत्पन्न हुआ है। इसलिये अर्जुन! यह जानो कि ब्रह्म सर्वव्यापी होते हुए भी यज्ञ में सर्वदा प्रतिष्ठित रहता है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान का यह चक्र स्वयं ब्रह्म से प्रारम्भ हुआ है। जो ब्रह्म से प्रवर्तित इस चक्र के अनुरूप व्यवहार नहीं करता, इस चक्र को चलाये नहीं रखता, वह पापमय जीवन जीता है। वह केवल इन्द्रियविलास में ही रमा है। अर्जुन! ऐसे व्यक्ति का जीना तो निश्चय ही व्यर्थ है।

श्रीकृष्ण के इन वाक्यों में अन्न व अन्नदान सम्बन्धी भारतीय चेतना की सम्पूर्ण परिभाषा आ गयी है। आगे के अध्यायों में हम अन्न व अन्नदान का जो विवेचन करेंगे वह श्रीकृष्ण के इन वाक्यों की व्याख्या का किञ्चित् प्रयास मात्र है। आगे का यह विवेचन श्रीकृष्ण के युधिष्ठिर को दिये गये उस अनुल्लङ्घनीय आदेश को पुनः स्मरण करने की सविनय चेष्टा भी है, जिसमें अन्नदान की महिमा का सार प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं –

ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर!